

भारतीय नौकरशाही की पुनःसंरचना (Restructuring Indian Bureaucracy)

मुद्दा उठा है भारतीय नौकरशाही की पुनः संरचना का, तो पहले हम इस मान्यता को स्वीकार करके चलेंगे कि किसी देश के प्रशासन में अर्थात् देश की समस्याओं का निराकरण करते हुए देश को विकास और प्रगति के पथ पर ले जाने में नौकरशाही का अहम् स्थान है। फिर आज की हालत में तीन प्रकार के प्रश्नों की जाँच बड़ी आवश्यक हो जाती है, आज से अगले पचास वर्षों में भारत को क्या करना है, उसके लिए किस प्रकार की नौकरशाही की आवश्यकता है, क्या करना है, क्या आज वह कैसी नहीं है? दूसरा प्रश्न यह है कि नौकरशाही का आज का ढाँचा किस प्रकार का है? और इसकी नई संरचना किस प्रकार होनी चाहिए? इस संरचना के लिए हमें किस प्रकार के नौकरशाह चाहिए? उनमें क्या-२ गुण हों? तीसरा मुद्दा उठेगा कि वह नई संरचना किस प्रकार प्रत्यक्ष में लाई जाये इसके लिये कितना समय उपलब्ध है? कौन इसके लिए समर्थ है, किसे इसके लिए प्रयास करना होगा, इत्यादि।

किसी जमाने में भारतीय नौकरशाही को स्टील फ्रेम कहा जाता था। आज कई लोग मानते हैं कि यह बदलकर अल्युमिनियम फ्रेम हो गई है। सतह पर खूब चमकीली, देखनेपर यही भ्रम पैदा करेगी स्टील फ्रेम ही है। लेकिन जब जहाँ झुकना या मोड़ना चाहो, वैसी ही मुड़ेगी और वैसे ही झुकेगी। यह मैलीएबल हो गई है। यानी पीट पीट कर इसे जैसा चाहो आकार दे सकते हैं....., डकटाइल भी है, खींचकर इसकी तार बनाई सकती है। जरा सी समस्या आये तो इसकी sputtering शुरू हो जाती है और सतह को कुरदने पर अंदर कोई दम-खम नहीं है।

लेकिन अब समस्या यह नहीं है कि कैसे हम वापस स्टील फ्रेम को कायम करें। हमें समझना होगा कि यह असंभव है और अवांछित भी है, वैसे ही जैसे घड़ी की सुई को उल्टा घुमाकर पुराने समय को छूने का प्रयास करना। समय बदला। समय के साथ-२ हमारी नौकरशाही बदली। उसके रीति-रिवाज़ बदले, उसकी मान्यताएँ बदली, उसके काम करने का ढंग बदला। यह तो होना ही था। जब हो चुका तब हम जागे और कहने लगे "अरे, यह जो सब कुछ हुआ यह तो सिस्टम फेल्युअर है।" क्यों ऐसी नौबत आई? इसलिये कि सिस्टम कोई स्थिर व्यवस्था नहीं है; इसमें प्रवाह है, गति है और गति का जो डायनॉमिक इक्विलिब्रियम होता है उसे बड़ी सूझ बूझ से बनाये रखना पड़ता है। हमारी नौकरशाही भी एक सिस्टम है। हम इसे स्टेटिक, स्थिर मान कर चल रहे थे। हमने विचारपूर्वक आवश्यक परिवर्तन इसमें नहीं किये। इसलिये जो परिवर्तन होते गये उन्होंने हमें सिस्टेमिक फेल्युअर के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया। सिस्टम का हर पल पुनर्मूल्यांकन करना पड़ता है उसे नित नये रूप में ढालना पड़ता है और यह प्रयास करना पड़ता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति जो इस बदलाव के सम्पर्क में आनेवाला है, उसका प्रबोधन हो, प्रशिक्षण हो और वब इस बदलाव को समझे, माने, और इसमें सहयोग दे। हमारी नौकरशाही बिखर गई क्योंकि यह सतर्कता हम नहीं रख पाये - न तो नौकरशाही के बड़े अधिकार, न देश के नेतागण, न अकेडेमिशियन्स और न समाज।

इसे हम एक छोटे उदाहरण द्वारा यूँ समझें - कि मंत्रालय की लिफ्ट के सामने क्यू में सब लोग खड़े होते थे - यह भी एक सिस्टम थी - किसी दिन एक आदमी ने कह दिया - भई मिनिस्टर को आगे जाने दो, वह जल्दी पहुँच गये अपने कमरे में तो हमारे कुछ काम ही निबटा देंगे। सो मंत्री जी को क्यू से हटकर आगे भेजने का सिस्टम चल पड़ा। लेकिन जल्दि ही दो जने ऐसे और निकले जो मंत्री जी के काम में हाथ बटाने के नाम पर क्यू से आगे निकलने लगे। दो से चार हुए, चार से आठ। बस हो गया सिस्टम फेल्युअर।

एक दूसरा उदाहरण भी है। सागरी तट पर स्मगलिंग रोकने के लिए कस्टम विभाग की नियुक्ति हुई। विभाग में कभी किसी ने छिपकर या धीमी आवाज़ में कह दिया - कि यदि मैंने थोड़ी घूस ले ली तो क्या हुआ? फिर औरों ने भी घूस में अपना हाथ बंटाया। एक दिन बंबई में RDX पहुँच गया और उसने तबाही बचाई। अब थापा जैसा सिनीयर अफसर कहता है कि हमने चाँदी समझ रखी थी, और चूँकि चाँदी की स्मगलिंग में आजकल ज़्यादा लाभ है इसलिए ज़्यादा रेट से घूस मांगी। इसी पर चिढ़ कर मुझे पकड़वाया गया। अब पुलिस और कस्टम वाले कहते हैं कि छिः छिः देखो कैसा सिस्टम फेल्युअर आ गया कि स्मगलर खुद तो ज़्यादा कमाऊ चीज़ ला रहे हैं (यानी चाँदी) लेकिन हमें ज़्यादा घूस देने को तैयार नहीं। मेरी निगाह में सबसे बड़ा सिस्टम फेल्युअर यह है कि कस्टम और पुलिस वालों का यह रिमार्क सुनकर नौकरशाही में कोई खलबली नहीं मची है और इस प्रवृत्ति के गंभीर खतरे के प्रति हम सजग या

संवेदनशील नहीं हैं।

उपरी परिच्छेदों के व्यंग को हम न देखें। उन उदाहरणों से हमें यह समझना है कि आज की नौकरशाही की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसकी संवेदनशीलता और सतर्कता दोनों लुप्त हो चुके हैं। पुर्नरचना किस प्रकार की हो जहाँ ये दोनों गुण लाये जा सकें?

हमारे सामने प्रश्न है कि अगले पचास वर्षों में भारत को क्या करना है, इसके लिये किस प्रकार की नौकरशाही चाहिये और क्या आज की नौकरशाही उस प्रकार की नहीं है? पिछले चालीस पैंतालीस वर्षों में हमने जब जब प्रश्न पूछा कि एक देश के नाते भारत को आगे क्या करना है तो कुछ ठोस उत्तर सामने आये जैसे - विकास की गति अर्थात् GNP को बढ़ाना, कल-कारखानदारी बढ़ाना, कृषि उत्पादन में स्वावलंबन लाना, अधिक रोजगार निर्माण करना, शिक्षा का समुचित प्रबंध करना, लोकसंख्या वृद्धि को रोकना, गरीबी हटाना, भ्रष्टाचार रोकना, कम्युनल हार्मोनी और राष्ट्रीय एकात्मता बनाये रखना, अंतर्गत सुरक्षा को सुधारना या संवारना। आज भी ये मुद्दे कम नहीं हुए हैं। इनमें से प्रत्येक काम आज भी हमारी लिस्ट पर है। बल्कि हम तो यह देखते हैं कि चालीस वर्षों पहले इन कामों की जितनी अहमियत रही होगी उससे आज अधिक अहमियत है क्योंकि इसमें से प्रत्येक क्षेत्र में हमारा performance अपरिपूर्ण रहा और समस्या का समाधान नहीं हो सका। यहाँ हमें सौ फीट नदी तैर कर पार करना है और हमने जी तोड़ कोशिश से नब्बे या निन्यानवे फीट भी पार कर लिये और डूब गये तो परिणाम क्या हुआ? डूबने के बाद क्या इस बात पर संतोष किया जा सकता है कि अपनी शक्ति भरकस प्रयास हमने किया? या कि इस बातसे कि चलो नब्बे फीट तो हम पार गये? असल कसौटी है कि आपने ध्येय पाया या नहीं? इसका उत्तर यही है कि भारतीय नौकरशाही बार-बार डूबी है वह भी अकेले नहीं, साथ में कई करोड़ की संपत्ति, मेहनत और सपने लेकर डूबी है।

नतीजा यह है कि अगले पचास वर्षों में भारत को वे सब काम भी करने हैं जो पिछले चालीस वर्षों में ख़तम करने थे। पर अब उनसे भारी अहमियत के कुछ प्रश्न उत्पन्न हो गये हैं। जैसे यह प्रश्न कि उपरोक्त ध्येय प्राप्ति के लिये हमारे पास कितना समय बचा है? यदि उतने समय में हम कुछ हासिल नहीं कर पाये तो क्या यह देश एक सार्वभौम एकसंघ देश के रूप में जीवित रहेगा? इस ध्येय प्राप्ति के लिये यदि कुछ त्याग करना पड़े तो इसके लिये कौन राजी होगा? चालीस वर्ष पहले यह प्रश्न नहीं उठा था क्योंकि तब त्याग और सेवा की भावना से जुड़े कई हज़ारों नेता, कार्यकर्ता और नौकरशाही मौजूद थे। लेकिन आज यह प्रश्न उठेगा। क्या लोगों को हम आज भी भरोसा दिला सकते हैं कि भारतीय नौकरशाही सच्चे मन से उपरोक्त ध्येय प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हैं? क्या जनता इस बात पर विश्वास करती है कि देश की नौकरशाही में कमसे कम कुछेक प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो भ्रष्ट नहीं हैं, सक्षम हैं, समर्थ हैं और देश के जनसामान्य की सुख सुविधा के लिये काम करते हैं? यदि जनता में यह विश्वास होगा तभी हमें उतना समय मिलेगा कि हम नौकरशाही की पुनः संरचना कर उससे कुछ उपयोगी काम करवा सकें।

आज भ्रष्टाचार ने समाज के हर क्षेत्र को छु लिया है। हमने यह स्वीकार कर लिया है कि हमारे देश में भ्रष्टाचार है, वह सर्वव्यापी है, राजकीय नेता और नौकरशाह भ उससे अछूते नहीं हैं बल्कि majority तो इसमें आकण्ट डूबे हैं। यदि राजकाज में से भ्रष्टाचार पूरी तरह निकल गया होता तो भी हमें नौकरशाही की पुनर्रचना की आवश्यकता होती क्योंकि आज का ढाँचा हमारे ध्येय प्राप्ति में फिर भी असमर्थ ही होगा। जिसकी चर्चा हम थोड़ा रुक कर करेंगे। और जब हम इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि भ्रष्टाचार को हटाना या कम करना या आज की लेवल पर रोक कर रखना तत्कास संभव नहीं है तो हमारी कठिनाई बढ़ जाती है। हम यह नहीं कह सकते हैं कि "रुको, पहले सारे भ्रष्टाचार को समाप्त करो, फिर नौकरशाही को सुधारेंगे" दूसरी ओर यदि हम ऐसी नौकरशाही चाहते हों जे भ्रष्टाचार को तो ज़रा भी न छुये, उसके प्रति चुँ तक न करे और फिर भी देश को वे सारे ध्येय प्राप्त करा दे तो यह भी संभव नहीं है। नौकरशाही की पुनर्रचना इस प्रकार करनी पड़ेगी कि नई पुनर्गठित नौकरशाही भ्रष्टाचार को रोकती रहे और धीरे धीरे कम करती रहे ताकि अन्य कार्यक्रमों के अच्छे फल समाज तक जल्दी से जल्दी पहुँच सके। यह अतिरिक्त शक्ति नौकरशाही में लानेका क्या उपाय हो सकता है?

विचारणीय है कि नौकरशाही का आजका गठन कैसा है। इसके चार हिस्सों की अलग अलग जाँच करनी होगी। एक हिस्सा है डी, सी और बी वर्ग के कर्मचारियों का। आज का ढाँचा ऐसा है कि ये कर्मचारी नीति-निर्धारण

(policy making) के काम में हाथ नहीं बँटाते। साथ ही field implementation की जिम्मेदारी भी इनपर नहीं है। यह दोनों काम ए वर्ग के अधिकारियों के जिम्मे पड़ते हैं। लेकिन सिस्टम की गतिमानता को बनाये रखनेमें इनका महत्वपूर्ण योगदान है जिसे आजतक नकारा गया है। नई संरचना में इस मुद्दे की विस्तृत चर्चा आगे करेंगे। ए वर्ग में भी दो हिस्से पड़ते हैं - IAS और non IAS अर्थात जनरलिस्ट और स्पेशलिस्ट। इसलिये कि जो non IAS हैं वे अपने अपने क्षेत्र के कुशल तंत्रज्ञ या यंत्रज्ञ होते हैं जैसे डॉक्टर हों या रॉकेट के विशेषज्ञ हों या बैंक की क्रेडिट पॉलिसी के माहिर हों। इनकी तुलना में IAS अधिकारी संख्या में अत्यंत कम होते हुए भी उनका पूर्णतया अलग रोल होता है। उनका अपना कोई एक क्षेत्र नहीं होता, फिर भी एक तरह की सर्वव्यापकता उन्हें सौंपी जाती है। यह मानकर कि स्पेशलिस्ट केवल अपन एक दायरे के बारे में सोचता है, इस तरह के कई दायरे मिलाने हों तो जे ग्रुप बचेगा, उसमें स्पेशलिस्ट कुछ नहीं कर सकता। तो वहाँ ऐसे अफसर की ज़रूरत होगी जिसने कई समस्याओं को एक साथ देखा है। इसलिये IAS अधिकारी के जिलास्तरीय पोस्टिंग मंत्रीगण या नेतागण कि कई कामों के निपटारे का जिम्मा और अधिकार दोनों उन्हें दिये गये हैं। निचले स्तर पर यही अधिकार पंचायत समिती अध्यक्ष, सरपंच आदि को दिये गये हैं।

इस नौकरशाही में जो दुर्गुण उतर गये हैं, एक नज़र उनपर डालें - इन्हें हम दो भागों में बाँटेंगे - एक ऐसे ऑफिसों के दुर्गुण जो टिपिकली छोटे हैं और जिन्हें केवल प्रोग्राम implementation करना पड़ता है - दूसरे उन ऑफिसों के दुर्गुण जिन्हें पॉलिसी भी बनानी पड़ती है।

पहली श्रेणी के ऑफिसों का सबसे बड़ा दुर्गुण है अविश्वास का। प्रशासन के लिये हमारे देश में जो नियम और कानून बने हैं, उन्हें पढ़ने पर यह स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है कि उन सबका केंद्रीय सूत्र यही है कि अपने निचले अधिकारी पर विश्वास मत करो - सदा उसे अविश्वास की दृष्टि देखो। यह एक अत्यंत downgrading मानसिकता है जिससे नौकरशाही को उबारना आवश्यक है।

जिस कर्मचारी को हमेशा अविश्वास के वातावरण में काम करना पड़ता है, उसकी मानसिकता ऐसी बन जाती है कि खुद भी अपने आपको विश्वास का अपात्र मानने लगता है। यहीं से धीरे धीरे उसका आत्मसमान, उसका initiative खतम होने लगता है। दूसरी और जो कर्मचारी जिम्मेदारी नहीं निभाता, विश्वास का दुरुपयोग करता है, उसे सज़ा देने की पध्दती और नीति अत्यंत धीमी गती से चलती है। इस प्रकार निचले तबके के कर्मचारियों में काम करने का, काम को अच्छे ढंग से निबटाने का, या काम की जिम्मेदारी उठाने का initiative खतम हो चुका है। कामचोर या भ्रष्टाचारी को सज़ा मिलती नहीं और काम करनेवालों को पुरस्कार और प्रशंसा के बदले अविश्वास से भरपूर नियम मिलते हैं जो उसकी कार्यक्षमता को बांध कर रख देते हैं। यह एक बात भी बाकी कर्मचारियों को हतोत्साह करने के लिये काफी है। वरिष्ठ अधिकारी भी ऐसे नियम बनाने का प्रयास करते हैं जो फुलप्रुफ हों। जिसमें निचला अधिकारी गलती या भ्रष्टाचार न कर सके। अकसर ऐसे नियमों में पहला नियम होता है कि सारी फाइलें, सारे निर्णय अधिकारी के हाथों ही निपटाई जायें। यानी उसका काम बढ़ा, डेलीगेशन ऑफ पॉवर की जितनी अच्छाइयाँ हों उनसे ऑफिस वंचित रहा, लोगों के काम में देर लगने लगी और निचले वर्ग में जो अच्छे कर्मचारी थे उन्हें अपनी कार्यप्रणवता बढ़ाने का कोई मौका नहीं मिला। मुझे याद आता है, कि एक जिला कार्यालय में ऐसा नियम बनाया गया कि सारे क्लर्क एक जगह बैठे, उसी कमरे में सुपरवाइजर भी बैठे ताकि बाहर से आनेवाला व्यक्ति केवल सुपरवाइजर से मिले ताकि कोई क्लर्क भ्रष्टाचार नहीं कर सके। बहुत वाहवाही हुई। उस सुपरवाइजर को बाद में यह कहते सुना गया कि लोगों से उसका जितना समय बरबात हुआ उसकी तुलना में पुरानी ही सिस्टम अच्छी थी। क्योंकि इस नई सिस्टम में भी क्लर्क का मोटिवेशन तो हुआ नहीं।

ऐसा अविश्वास और उससे उपजी अकर्मण्यता धीरे धीरे उपर तक पहुँचने लगती है। हर व्यक्ति डेलीगेशन ऑफ ऑवर से कतराता है। लेकिन जो स्मार्ट व्यक्ति है और जिसे कामचोरी करनी है या भ्रष्टाचार वह तो उसे करने के सौ तरीके ढूँढ ही लेगा क्योंकि सज़ा उसे होनी नहीं है। आज सरकारी नौकरी में B, C और D वर्ग में आनेवाला कर्मचारी आने से पहले ही सोचता है कि उसे उपरी आमदनी कितना मिलेगी, काम कितना टाला जा सकता है, धूमने का मौका कितना है, और देर से ऑफिस आने तथा आकर काम न करने की क्या क्या सुविधाएँ हैं। कई व्यक्ति अपने सारे काम निचले अधिकारियों को डेलीगेट कर अपना सारा काम टाल जायेंगा - यहाँ तक कि जो अधिकार और जिम्मेदारी उनकी अपनी है - वह भी। लेकिन मॉनिटरिंग नहीं कर पायेंगे। बगैर proper monitoring के कोई भी delegation

प्रभावशाली नहीं हो सकता। साथ ही अब अपवार्ड डेलिगेशन ऑफ पॉवर भी होने लगा है। निर्णय की ज़िम्मेदारी टालना हो, और फाइलें पढ़ने में अपनी पूरी इमानदारी या समय नहीं लगाना हो तो आसान तरीका है कि फाइल को बॉस के पास भेज दिया जाय।

इन बातों की विस्तृत चर्चा यहाँ करने का कारण है कि नई संरचना में इस स्थिति में सुधार लाना अत्यंत आवश्यक होगा।

इसके लिये नौकरशाही के निचले तबके में जो सुधार तत्काल आवश्यक हैं वे हैं

- (क) विश्वास और विश्वसनीयता का वातावरण पैदा करना
- (ख) हर कर्मचारी को जिम्मेदारी उठाने की, समय के माँग को तोलने की ट्रेनिंग देकर इस लायक बनाना।
- (ग) अकर्मण्यता और भ्रष्टाचार को शीघ्रगति से कड़ी सज़ा देना।
- (घ) निचले अधिकारियों को जिम्मेदारी सौंपकर उनके कामके monitoring की व्यवस्था सुधारना।
- (ङ) ऑडिट और इन्स्पेक्शन के जिन मुद्दों में खास आर्थिक खतरे नहीं हैं और कर्मचारियों का समय बचाया जा सकता है वहाँ वे आवश्यक सुधार लाना। इन सुधारों का उद्देश्य हो विश्वास पैदा करना और आर्थिक efficiency लाना।
- (च) कर्मचारियों को काम के लिये प्रोत्साहित करने के उपाय लागू करना।
- (छ) सरकारी कामों की लाभ हानि की जाँच की ट्रेनिंग देना।
इत्यादि।

अच्छे प्रशासन की एक बड़ी फिट व्याख्या शिवाजी के गुरु रामदास ने एक पत्र में की है। शिवाजी पुत्र संभाजी महाराज को यह समझाते हुए कि प्रशासन कैसे चलाया जाये, गुरु रामदास कहते हैं - "जनांचा प्रवाहो चालला, म्हणजे कार्यभाक झाला, जन ठायी-ठायी तुंबला म्हणजे खोटे!" अर्थात् यदि लोगों के काफिले आ - जा रहे हों, उनके काम में रुकावटें नहीं आती हों, तो समझना तुम्हारा शासन अच्छा है, जब देखना कि लोग जगह जगह अटक रहे हैं, उनकी समस्याएँ उलझ रही हैं, उनके समस्या-निवारण में देर लग रही है तो समझना कि तुम्हारे प्रशासन में खोट है - कमज़ोरी है। जिस नौकरशाही में सबसे निचला कर्मचारी भी इस व्याख्या को निभा लेता हो, वही सक्षम नौकरशाही है। जो इस व्याख्या को कपोल कल्पना या Utopia मानते हों वे जान लें कि विदेशों में इस व्याख्या का प्रत्यक्ष उदाहरण रोजाना ही देखा जा सकता है।

आज देशभर में कई training institutes प्रशिक्षण का काम करने का प्रयास भी कर रही हैं। किन्तु गैरसरकारी क्षेत्रों के कई गण्य मान्य व्यक्तियों को सरकारी प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रभावशाली होने पर संदेह है। क्योंकि जब उन्हें भी आज के प्रभावहीन ढाँचे के मुताबिक काम करना है तो वह दूसरों को क्या सुधार सिखायेंगा। खासतौर पर जहाँ नवीनता लाने की आवश्यकता है, प्रशिक्षण संस्थाओं को आज तक प्रभावी नहीं पाया गया। इसका कारण यह नहीं कि प्रशिक्षण की संकल्पना गलत है। कारण है कि उसका तरीका शायद गलत, अपूर्ण, inadequate और केन्द्रित है। वास्तविक ट्रेनिंग तब होगी जब ऑफिस का हर बड़ा अधिकारी छोटे अधिकारी के ट्रेनिंग को अपनी ज़िम्मेदारी मानता हो, साथ ही प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य हो कि कैसे ऑफिस एक अच्छे टीमवर्क से काम को निपटाता है और टीम के हर मੈबर के प्रशिक्षण में रुचि लेता है। वैसी सिस्टम हम नहीं बना पायें हैं।

अब ज़रा देखें उन दुर्गुणों को जो ऊँचे स्तर के अधिकारियों और ऑफिसों में आ गये हैं। तत्काल दिख जाने वाले और गिनाये जा सकने वाले दुर्गुण हैं कि आज की नौकरशाही असंवेदनशील है, सतर्क नहीं है, भ्रष्टाचार को

निबटाना आवश्यक नहीं समझती बल्कि स्वयं ही भ्रष्टाचारी है। जनता यह भी बड़े पैमाने पर मानती है कि नौकरशाही भ्रष्ट के अलावा अकर्मण्य है, आलसी है, और निराश भी है। लेकिन जनता ने एक बड़ा अहम् दुर्गुण अभी तक नोट नहीं किया है। वह है नौकरशाही का अहंकार या arrogance, उध्दतता। यहाँ सरकारी अफसरों के व्यक्तिगत अहंकार या घमण्डी स्वभाव की नहीं बल्कि इस ग्रुप के अहंकार की बात है जिसके तहत नौकरशाही कुछ मान्यताएँ लेकर चलती है १) कि सरकार अर्थात् नौकरशाही जो भी कर रही है वह बहुत अच्छा है २) सरकार जो कर रही है उससे अच्छा कुछ नहीं किया जा सकता।

३) जिस काम को सरकार खुद नहीं करे वह कभी नहीं हो सकता। इस अहंकार का परिणाम पिछले चालीस वर्षों में SCAM का बवंडर बन कर हमारे सामने आया जिसकी चर्चा आगे चल कर करेंगे। पर अभी इसकी अन्य बुराइयों को देखें। यह ग्रुप अहंकार इतना बढ़ गया कि इसने सरकार को टुकड़े - टुकड़े में बाँट कर रख दिया। उदाहरण स्वरूप हम शिक्षा का क्षेत्र देखें। नौकरशाही केवल यह कह कर नहीं रुक जाती कि शिक्षा विषयक सरकारी नीतियाँ ही सर्वश्रेष्ठ हैं और सरकार के बाहरी लोगों को इस पर टिप्पणी करने का हक नहीं है - नौकरशाही आगे यह भी कहती है कि शिक्षा के विषय में नौकरशाही का शिक्षा विभाग जो कुछ कह रहा है वही सही है और बल्कि नौकरशाह इस पर टिप्पणी न करे। इसीलिये यदि आप बड़े नौकरशाह भी हुए तो आप नहीं पूछ सकते कि शिक्षा विभाग में ऐसी सुव्यवस्था क्यों नहीं है कि आपके बच्चों को आसानी से स्कूल में एडमिशन मिल जाय? मजे की बात है कि यदि आप बहुत बड़े नौकरशाह है तो अपनी हस्ती का, अपने रुतबे का, अपने रुआब का वजन डालकर आप यह ensure कर सकते हैं कि आपके अपने बच्चों को स्कूल एडमिशन का इन्तज़ाम हो जाये। अर्थात् जहाँ सबके कामों में अव्यवस्था हो रही है, वहाँ आपका रुतबा या स्टेटस भी आपको अव्यवस्था हटाने की मांग का हक नहीं देता, और उस दिशा में आपकी सलाह रुतबे के बावजूद नहीं मानी जाएगी। हाँ, नौकरशाही यह इन्तज़ाम कर सकती है कि आपकी व्यक्तिगत कठिनाई दूर की जा सके।

इस कम्पार्टमेंटलाइसेशन के फलस्वरूप देश के हर क्षेत्र में पॉलिसी मेकिंग के exercise में हमने reductionist method अपनाई है - ये लोग नहीं बोलेंगे - वे नहीं बोलेंगे - वे तीसरे ग्रुप के भी नहीं बोलेंगे - करते करते बाकी बचता है एक डिपार्टमेंट - उसका भी एक डेस्क, और वहाँ का एक अधिकारी - यदा कदा दो या तीन - बोलने का या सोचने का अधिकार केवल उन्हीं के पास बाकी बचता है। इसलिये एकत्रित विचार नामकी कोई प्रोसेस ही सरकार में नहीं हो पाती है। कम्पार्टमेंटलाइसेशन का दूसरा असर यह पड़ा है, कि जब कोई नई समस्या, नई आइडिया, नया काम अर्थात् कुछ भी नया, कुछ भी ज़्यादा, कुछ भी वह काम जो कल नहीं किया था पर आज करना पड़ेगा - उसके प्रति प्रत्येक व्यक्ति यह रुख अपनाता है कि यह काम मेरा नहीं है - यह जिम्मेदारी मेरी नहीं है। कम्पार्टमेंटलाइसेशन का तीसरा नतीजा यह है कि हर नौकरशाह के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपना रुतबा, अपना धौंस बढ़ायें - क्योंकि तभी उसे दूसरे डिपार्टमेंट से वह सहायता मिल सकती है जो उसे एक सामान्य आदमी के नाते भी मिलनी चाहिये थी, लेकिन वास्तविकता में नहीं मिलती है। इस प्रकार जो जहाँ है वहीं अपना रुतबा बढ़ाने की कोशिश करता है। यह रुतबा मापते का तरीका भी बड़ा मज़ेदार है। मसलन आपका ऑफिस रुम कितना बड़ा है, आपके कण्ट्रोल में कितनी कारें हैं, कितना बजट है, कितने आदमी हैं, कितने कम्प्यूटर्स हैं, कितने सुरक्षा गार्ड्स हैं, आप अपने विजिटर्स को कितनी देर अटका कर रख सकते हैं और सर्वोच्च मानदण्ड यह कि कितने आदमियों का काम आपकी व्यक्तिगत स्वीकृति के बगैर नहीं होता। यह एक बड़ी नकारात्मक प्रवृत्ति नौकरशाही में पल रही है और बढ़ रही है।

नौकरशाही की पुनर्रचना की ज़रूरत क्यों आन पड़ी? इसका एक मुख्य कारण है कि १९५०-१९६० की तुलना में आज हमारी विकास के तरीकों की मान्यता ही बदल गई है। तब हमारा नारा था समाजवादी समाज का जिसमें प्राइवेट और पब्लिक दोनों सेक्टरों के सहयोग, और सह-अस्तित्व की बात थी। पिछले चालीस वर्षों में बड़ी धीमी गति से हम इस बात के प्रति जागे कि न तो हमने अपने प्राइवेट सेक्टर को अधिक एफिशियंट बनाया और न पब्लिक सेक्टर को। सरकार हर क्षेत्र में घुसपैठ करने लगी और कई निरर्थक काम अपने सिर पर ओढ़ने लगी। जहाँ पब्लिक सेक्टर में नये काम किसी खास वजह से लेने पड़े वहाँ भी withdrawal scheme की आवश्यकता होती है। पर इस बात को नज़रअंदाज़ किया गया। जिन कामों से सरकार १०-१५ वर्ष पहले से ही अच्छी तरह प्लान करके बाहर निकल सकती थी, वह प्लानिंग नहीं किया गया। यहाँ जमशेदपूर की टाटा कंपनी का उदाहरण पेश है। उन्होंने workers से सलाह करके एक प्लान बनाया कि कैसे अगले १५ वर्षों में वे workers की संख्या में कटौती कर ऑटोमेशन बढ़ायेंगे और फिर भी मजदूरी में कटौती नहीं होगी। लेकिन सरकारी क्षेत्र में तरह के प्लानिंग की बात ही असंभव है। यह भी आज के

ढाँचे की अपरिपक्वता का सबूत है और नये ढाँचे के लिये सावधानी बरतने की बात है।

आज हम आर्थिक सुधार और लिबरलाइसेशन की बात करते हैं। इसका उद्देश्य क्या है? जब हमने समाजवादी आर्थिक नीति अपनाई तो उसका उद्देश्य था गरीबी और अमीरी के बीच की खाई को दूर करना। इसलिये दो महत्वपूर्ण नीतियाँ अपनाई गई - कि कोअर सेक्टर के रॉ मटेरियल जैसे कोयला, स्टील, बैंक, रेल आदि सरकारी कब्जे में रहेंगे - ताकि उनके सरकारी वितरण का लाभ गरीब जनता को भी मिलता रहे और मूलभूत सुविधाएँ जैसे स्वास्थ्य, आवागमन, इत्यादि को उपलब्ध कराने का जिम्मा सरकार ले। लेकिन वास्तव में सरकार ने कोअर सेक्टर के बाहर के भी कई काम ले लिये और केवल एक expansionist या रुतबा भड़ानेवाली नीति अपनाई!!

पुनः संरचना के लिये नौकरशाही के ढाँचे में क्या परिवर्तन करने चाहिये यह प्रश्न और यह विषय आज की तिथि में महत्वपूर्ण क्यों बन गये हैं? इसका मुख्य कारण यह मान्यता है कि आज हमारी नौकरशाही आर्थिक लिबरलाइसेशन के सिद्धांतों की ओर उन्मुख नहीं है, और उसे वैसा बनाना आवश्यक है। हमारी नौकरशाही विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया में भी बाधक है, पुनर्रचना से उसे विकेंद्रीकरण में भी सहायक बनाना होगा।

पहले हम विकेंद्रीकरण की बात करेंगे। नौकरशाही का या प्रशासकीय सत्ता का आज का ढाँचा पिरॅमिड की तरह है। मानों एक बड़े मैदान में सैकड़ों पिरॅमिड खड़े कर दिये हों। हर व्यक्ति अपने अपने पिरॅमिड में एक दूसरे को पछाड़ते हुए ऊँचा उठ सकता है लेकिन एक functional sector का दूसरे के साथ कोई कम्यूनिकेशन नहीं - कोई साझा नहीं। जिस क्षेत्र में कोई पिरॅमिड नहीं उसका ख्याल रखनेवाला कोई नहीं। आज हमारा सारा प्लॅनिंग functional sectors के आधार पर होता है यथा कृषि क्षेत्र का प्लॅनिंग या यातायात sector का प्लॅनिंग। इसकी जगह हमें Area planning और apatial hierarchy का ढाँचा अपनाना होगा। इस दिशा में अत्यंत छोटा प्रयास पंचायत राज व्यवस्था के अंतर्गत अभिनिविष्ट है। लेकिन उस ढाँचे को हमने पूरी तरह विकसित नहीं किया है। यहाँ फिर एक बार समय बड़ा महत्वपूर्ण बन जाता है। यदि हम आर्थिक लिबरलाइसेशन को बड़ी तेज़ी से लाने का प्रयास करें तो उस तेज़ी में हम पुराने ढाँचे को खींचखाँच कर, फाड़कर, तोड़ मरोड़ कर फेंक देंगे और जल्दबाज़ी में वह उठा लेंगे जो भी हाथ आयेगा। हमारा रवैया वैसा ही होगा जैसा किसी आग में जलते व्यक्ति का अपने कपड़ों के प्रति होता है। ज़ाहिर है कि वैसी पुनर्रचना की बात हम नहीं कर रहे बल्कि एक सूझबूझ के साथ की जानेवाली पुनर्रचना की बात करेंगे जहाँ पुराने को सुधार कर या बदलकर नया परिवर्तन लाने के लिये कुछ समय अवश्य दिया गया हो। लेकिन यह ध्यान हमेशा रखना पड़ेगा कि बहुत कम ही समय हमारे पास उपलब्ध है।

किसी भी देश की सरकार का, प्रशासन का और नौकरशाही का एकमात्र नैतिक justification यही होता है कि वह ऐसे नियमों का सुचारु रूप से पालन करवाती है जो समाज ने अपनी सुखसुविधा के लिये उपयोगी मानकर नियत किये हैं। यह एक अत्यंत व्यापक कल्पना है जिसके सभी पहलुओं को ठीक से देखना पड़ेगा। समाज अपने लिये किस सुखसुविधा की अपेक्षा करता है? इसका प्रतिबिम्ब है रामचरितमानस में तुलसीदासजी के वचन - "दैहिक, दैविक भौतिक तापा, रामराज्य नहीं काहुं हि व्यापा" - अर्थात् प्रत्येक प्रकार की दुश्चिंता से छुटकारा। हम सत्य की ओर चलें, प्रकाश की ओर चलें, अमृतत्वकी ओर चलें यह करने में समाज व्यवस्था हमारी सहायक हो और इतनी ही माँग समाज का हर व्यक्ति करता है। इसका उपाय भी बताते हैं - "संगच्छध्वं, सं वदध्वं, सं वो मनांसि जाननाम् - हम साथ साथ चलें - एकत्रित रूप से विचार करके बोलें, एक दूसरे के मन को मन से मिलायें इसी नियम का पालन करके देवताओं ने श्रेष्ठत्व अर्जित किया"। यहाँ "हम" कौन हैं? पूरा समाज - न कि केवल नौकरशाही। इसलिये आज भी नौकरशाही को बार-बार अपने मूलतत्त्व की ओर, अपने जड़ों की ओर देखना होगा। यह मूलतत्त्व - या जड़ें समाज ही हैं। नौकरशाही की उपयोगिता और प्रभावशक्ति तभी तक रहेगी जब तक वह लोगों से, समाज से अपना पोषण ले सके, या दूसरे शब्दों में तब तक जब तक समाज उसे पोषण देने में दिलचस्पी ले। और नौकरशाही को स्वयं भी समाज की ओर उन्मुख होना होगा। समाज से उसका कम्यूनिकेशन बराबर चलता रहे और जन सामान्य की सुख सुविधा के अनुसार तुरंत ढल सकने का लचीलापन, नौकरशाही में हो। इसके लिये समाज की इकाइयों और नौकरशाही के बीच विचारों का, योजनाओं का और स्वयं व्यक्तियों का (पर्सनलिटीज़) का भी आदान प्रदान बढ़ाना होगा। नौकरशाही को समाज के घर-आंगन तक पहुँचना होगा और समाज के हर व्यक्ति को नौकरशाही के अंतरंग तक। ऐसा हो सके इसकी दो शर्तें हैं। पहली शर्त यह कि समाज के हर व्यक्ति का स्तर ऊँचा हो, विकासमान हो औरविकेंद्रित हो। दूसरी

शर्त थोड़ी अधिक गहरी है।

यद्यपि हम नौकरशाही की पुनर्रचना की बात कर रहे हैं, लेकिन ऐसा नहीं कि यह विषय हमारे समाज जीवन को प्रभावित करने वाले अन्य विषयों से अछूता होदा हो। नौकरशाही का जितना सीधा संबंध प्रशासन चलाने से है उतना ही संबंध देश की आर्थिक नीति से भी है, सामाजिक स्थिति से है, राजनैतिक व्यवस्था से है और उससे भी गहरा संबंध देश की चिंतन प्रणाली से है।

आज देश में चाहे नौकरशाही की पुनर्रचना करना हो या कोई दूसरा बड़ा फेरफार करना हो, पहले तीन क्षेत्रों का सम्यक विचार करना पड़ेगा - हमारी आर्थिक नीति, हमारी शिक्षा नीति (क्योंकि यही हमारी आर्थिक efficiency को तय करेगी) और हमारा सामाजिक फलसफा, चिंतन या दर्शन।

एक खेद की बात है कि हमारे सारे प्लानिंग प्रोसेस में शिक्षा का क्षेत्र मबज़ एक मूलभूत सुविधा का क्षेत्र बन कर रह गया। इस क्षेत्र का स्पेशल स्टेटस बहुत कम नौकरशाहों ने पहचाना। वास्तविकता यह है कि यदि शिक्षा है जो आदमी आदमी है। शिक्षा है तो समाज है, शिक्षा है तो रोज़गार है, उत्पादन है, कार्यकुशलता है, efficiency है, नैतिक मूल्य है, विचार प्रणवता है और अपनी थाली, अपनी achievements को आनेवाली पीढ़ी को सौंपने की क्षमता है। यदि शिक्षा है तो देश है। हमारी नौकरशाही का फेल्युअर यहाँ से आरंभ हुआ कि शिक्षा पद्धति को हम अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं ढाल सके। आर्थिक क्षेत्र में हम capital expenditure, return on capital, gestation period आदि बातें करते हैं। लेकिन शिक्षा क्षेत्र में हमारी gestation period बढ़ता रहा। Rate of return on Capital समान रूप से बढ़ने की बजाय ऐना स्थिति आई कि ग्रंज्युएशन अर्थात् १५ वर्ष बिताने पर भी शिक्षा के बल पर रोज़ी-रोटी मिलने की कोई गॅरंटी नहीं रही। जिसके पास पांच या दस वर्ष का ही समय हो उसके लिये शिक्षा लेने या न लेने का कोई मतलब नहीं रहा। कार्यप्रणव या हुनरवाले लोग नहीं बन पाये इसलिये औद्योगिक प्रगति भी कम रही। आज भी देश में अकुशल मजदूरों की संख्या ७० प्रतिशत से अधिक है और शिक्षित जनसंख्या ५० प्रतिशत से कम।

यह अकार्यकुशल, अशिक्षित जनता दो क्षेत्रों में हमारे पांव पीछे खींचती है - एक तो आर्थिक efficiency के क्षेत्र में। यही एक क्षेत्र है जो तय करता है कि कोई देश सार्वभौम और स्वतंत्र रहेगा या नहीं। विचारणीय है कि भारत में ईस्ट इंडिया का काम भी व्यापार की सहुलियतों से ही आरंभ हुआ था। और जब कंपनी ने अपने पांव जमाने आरंभ किये तो सबसे पहले यहाँ के हुनरवाले, कुशल कारीगरों को समाप्त कर यहाँ के औद्योगिक उत्पादन को खतम करना उनका प्राथमिक कार्य था। आज भी आर्थिक सुधार करने हुए यदि हम अपने मानवीय संसाधनों में कम पड़ गये (और जो स्पष्ट चिन्ह दिख रहे हैं उनके अनुसार हम वाकई अपने manpower resources में कम पड़ रहे हैं) तो केवल आर्थिक लिबरलाइजेशन से देश की आर्थिक कठिनाई दूर नहीं हो सकती और न GNP बढ़ सकता है और न अमीरी - गरीबी के बीच की खाई भर सकती है। अर्थात् वह आर्थिक विकास हम नहीं पा सकते जिसके लिये आर्थिक सुधार का सारा प्रयास पिछले दो वर्षों में किया जा रहा है।

दूसरा सवाल है empowerment of masses का। जब हमारी साठ से सत्तर प्रतिशत जनता अशिक्षित और अकार्यकुशल हो तो फिर empowerment of masses की संकल्पना में कितना तथ्य या जोर हो सकता है? हम कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि यही जनसामान्य नौकरशाही के साथ हाथ बँटायेंगे? यहाँ हम "नौकरशाही पर अंकुश" की चर्चा नहीं कर रहे। क्योंकि अंकुश में फिर अविश्वास वाली बात निहित है। हमें एक साझेवाली नौकरशाही का ढाँचा चाहिये जिस ढाँचे में सामान्य जनता आसानी से आ-जा सके - कभी केवल सुझाव देकर हाथ बँटाये, कभी प्रत्यक्ष रूप में जिम्मेदारियाँ निभाकर। थोड़ी हदतक निगरानी का काम भी जनसामान्य को करना होगा क्योंकि नौकरशाही का भ्रष्टाचार, अकर्मण्यता और immunity from punishments एक दिन में दूर नहीं होंगे। नौकरशाही की सिस्टम को गतिमान और balance रखने के लिये इसके प्रत्येक काम में जनसामान्य का विचारपूर्वक साझा होना चाहिये - वह वैचारिक परिपूर्णता उचित शिक्षा के बगैर नहीं आती। इस प्रकार शिक्षा क्षेत्र को neglect करके हमने अपने लोकतंत्र को भी खतरे में डाल दिया है और नौकरशाही को भी अवरुद्ध कर दिया है। दुर्भाग्य से आज हमने नई आर्थिक नीति की बात तो आरंभ कर दी पर शिक्षा नीति की हम आज भी उतनी ही उपेक्षा कर रहे हैं बल्कि अब तो पहले से अधिक।

अन्तिम प्रश्न समूह है कि नौकरशाही की पुनर्रचना कौन करे? पुनर्रचना के कारण जिनकी अनिर्बंध सत्ता खतरे में आनेवाली हो वे क्यों आसानी से पुनर्रचना लाने देंगे? एक दूसरा प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। नौकरशाही की पुनः संरचना करनी है यही सोचकर यदि नौकरशाही में कुछ उलटा - पुलटा दिया तो उससे क्या लाभ? यदि विचारपूर्वक फेरफार नहीं किये तो उनसे उत्पन्न खतरे के विषय में भी हमें ठहरकर सोचना पड़ेगा। यहीं हमारे सामाजिक फलसफे का मुद्दा महत्वपूर्ण बन जाता है। नौकरशाही की सही दिशा में पुनः संरचना तभी संभव है जब जनता इसकी माँग करे। जनता माँग तभी करेगी - जब वह सुशिक्षित हो और जानती हो कि "सं वो मनांसि जानताम्" के सूत्र में उसका अपना क्या रोल है। यह रोल विचार-प्रक्रिया और कार्यकुशलता दोनों क्षेत्र में होगा। अर्थात् हमारी जनता तभी सुशिक्षित कहलायेगी जब वह कार्यकुशल भी हो और विचार प्रणव भी। क्या हमें अंदाज़ा है कि यह सुशिक्षा का कार्य कितने बड़े पैमाने पर करना है? देश के लगभग तीस करोड़ नाबालिग (आयु अठारह वर्ष से कम) और करीब उतने ही प्रौढ़ व्यक्ति आज शिक्षा की दृष्टि से "empowered" नहीं हैं और इसीसे वे आर्थिक कीमत (फीस और समय दोनों के हिसाब से) प्रतिवर्ष बढ़ रही है। आर्थिक सुधारों की लिस्ट में एक महत्वपूर्ण और रामबाण औषधी यह मानी जा रही है कि शिक्षा की पूरी कीमत विद्यार्थी से वसूल की जाय। इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय दूसरा नहीं हो सकता है। यदि यही निर्णय कायम रहा तो जनसामान्य का empowerment कभी नहीं हो सकता और जनसामान्य की नौकरशाही में साझेदारी भी नहीं हो सकती।

अर्थात् नौकरशाही की accountability में कुछ मूलभूत सुधार आवश्यक हैं। आज की स्थिति यह है प्रशासक के गलत निर्णय का आर्थिक बोझ जनता उठाती है और राजकीय consequence नेतागण उठाते हैं। नेता का गलत प्रशासकीय निर्णय हो (जैसे भ्रष्टाचार, पैरवी, शिफारस इत्यादि से उत्पन्न निर्णय) तो उसका फल भी - चाहे आर्थिक या प्रशासनिक - वह भी जनता को भुगतना पड़ता है और यदि दोनों के आर्थिक निर्णय गलत हुए तो पूरे देश का भविष्य डूब सकता है लेकिन व्यक्तिगत रूप में वह जिम्मेदार नौकरशाह बच ही जायेंगे - बल्कि कई बार तो अच्छी खासी संपत्ति या नाम भी इकट्ठा कर लेंगे।

ऐसी स्थिति में फससफे की बात इसलिये उठी है कि सदियों से भारतीय मानस यही मानता आया है कि जीवन की सार्थकता देने में है - छीनने में नहीं। शिक्षा और ज्ञान का प्रचार और विस्तार कुछ ऐसी वस्तु है जिसकी तौल आर्थिक तराजू पर नहीं तुलती। अच्छे शिक्षक की पहचान यही बताई गई कि उसकी वृत्ति अपरिग्रह की हो न कि चीजों बटोरने की। अच्छे समाज की पहचान बताई गई कि शिक्षक के सर्वाधिक अपरिग्रही (यानी सिक्के बटोरने की भाषा में "गरीब") होते हुए भी समाज उसका सर्वाधिक आदर करें। इस एक सामाजिक मूल्य ने हमारे समाज को सदियों तक बचाये रखा। टूट फूट कर बिखरने नहीं दिया। हमारी शिक्षा नीति को बनानेवाले नौकरशाह इस सामाजिक दर्शन का सदुपयोग कर शिक्षा प्रणाली को कम खर्चीली, जीवन से अधिक जुड़ी हुई बना सकते थे लेकिन ऐसा नहीं हुआ। नई आर्थिक नीति में सारी सोच इस फलसफे से उल्टी है। इसलिये नौकरशाही की संरचना में कोई प्रभावशाली पुनर्गठन होगा ऐसा आज नहीं लगता। शायद सरकार कई सेक्टरों में से अपने आपको हटा ले जैसा घोषित किया है। इस प्रकार नौकरशाही के आकार को कम किया जा सकता है - लेकिन ज़रूरी नहीं कि उसके परिणामस्वरूप आर्थिक विकास की गति तेज़ हो। और यदि यह जल्दबाज़ी में हुआ तो व्यापक हिंसाचार और सामाजिक मूल्यों के अधिक ह्रास की ही संभावना अधिक है। अतएव आर्थिक विकास मापने का तरीका भी सोच समझकर ही तय करना पड़ेगा। लोगों ने यह जता दिया है कि इस देश की भूमि पर यदि कारगिल कंपनी नमक बनकर पैसे कमाती है और सरकार उनके प्रॉफिट को अपने DGP में शामिल करना चाहती है तो यह जनता को मंज़ूर नहीं। जनता देखना चाहेगी कि इस देश की अपनी संपत्ति बढ़ी या नहीं। यदि नई आर्थिक लहर में यह सामाजिक मूल्य बचा रह सका तो समाज में सुविधा का फैलाव भी होगा और फिर समाज नौकरशाही को बदलने में समर्थ होगा।

तब तक नौकरशाही में रहकर जिन्हें कुछ करना है उनके लिये यही सूत्र है कि अपनी अपनी जगह पर पारदर्शिता लाने का प्रयास करो, अपने अधीनस्थोंके प्रति प्रशिक्षक की भूमिका अपनाओ, जहाँ अच्छाई दिखे उससे तुरंत समानुभूति प्रकट करो, उसे अकेले न पढ़ने दो और अपने कार्य की आर्थिक efficiency बढ़ाओ। जहाँ जहाँ विकेंद्रीकरण संभव है उसे अपनाओ और जनसामान्य से सिस्टम का वैचारिक आदान प्रदान बढ़ाने के तरीके अपनाओ। पुनर्रचना के लिये बना बनाया सूत्र या मॉडल खोजने की बजाय उसे अपने देश की मिट्टी से जुड़कर यदि हम विकसित होने दें तो ही उसमें

